इकाई 7 राज्य और बाज़ार पर सामयिक प्रबंध

इकाई की रूपरेखा

7.1 प्रस्तावना

7.2 बाज़ार और राज्य की विभाजन रेखा

7.3 राज्य का पतन और इसकी क्षमताओं का पुनर्गठन

7.4 बाज़ार, राज्य और समाज

7.5 राज्य के लिए संभावनाएँ

7.6 सारांश

7.7 अभ्यास प्रश्न

7.1 प्रस्तावना

लैटिन अमेरिका पर सामयिक प्रबंध में लोकतंत्रीकरण और आर्थिक प्रक्रियाओं को सफल घोषित किया गया है। किन्तु यह भी माना जाता है कि इन दोनों ही प्रक्रियाओं के कुछ दोष हैं। इस बीच, लोकतंत्र को 'समेकित' घोषित कर दिया गया है। इसी प्रकार, बाज़ार भी आर्थिक वृद्धि के वाहक के रूप में मज़बूती से स्थापित हो गए हैं और राज्य को मंडी की रक्षा करने और उसे सुगम बनाने के नए धंधे मिल गए हैं। यह भी 1994 में मैक्सिको में, 1998 में ब्राज़ील में, और 2002 में अर्जेन्टीना में बाज़ार तंत्र की विफलता और क्षेत्रव्यापी आर्थिक विस्थापन के बावजूद हुआ है।

यहाँ यह बात ध्यान देने योग्य है कि जहाँ लोकतंत्रों को 'समेकित' बताया जा रहा है, वहीं वे संक्रमण काल के अपने अनुदारवादी चरित्र को छोड़ नहीं पाए हैं; और इस बात की पूरी संभावना है कि वे किसी विकल्प के अभाव में बहुत लंबे समय तक बने रहेंगे। 1960 के दशक के उन वैध और 'समेकित' लोकतंत्रों से यही उनका प्रमुख अंतर है, जो रूढ़िवादी सैनिक तख्तापलटों की चुनौती से बच नहीं पाए थे (उन्होंने क्रान्तिकारी आन्दोलनों के रूप में एक और विकल्प की चुनौती का सामना किया था)। इसी प्रकार, लैटिन अमेरिकी राज्यों ने आमूल परिवर्तनकारी आन्दोलनों और विदेशी निगमों तथा उनकी सरकारों की ओर से प्रस्तुत विकल्पों के खिलाफ लगभग आधी शताब्दी तक आयात विकल्प औद्योगीकरण (Import Substitution Industrialisation – ISI) नीति की राज्य-केन्द्रित विकास नीति का बचाव और संरक्षण किया था। किन्तु आयात विकल्प औद्योगीकरण की रणनीति को काफी पहले 1980 के दशक की नव-उदारवादी लहर के चलते छोड़ दिया गया था। आज, नव-उदारवाद का भी कोई विकल्प नहीं है; विडम्बना यह है कि बौद्धिक स्तर पर भी कोई विकल्प नहीं है।

7.2 बाज़ार और राज्य की विभाजन रेखा

राज्य की भूमिका में कटौती और इसके स्थान पर आत्म-नियंत्रक बाज़ार का लैटिन अमेरिकी सरकारों के आर्थिक कार्यक्रम में मुख्य स्थान है। यह माना जाता है कि यदि राज्य की भूमिका में अत्यधिक कटौती हो जाए तो इससे एक पूँजीवाद को उभरने का अवसर मिलेगा जो निजी क्षेत्र से स्वाधीन होगा और आर्थिक प्रसार को वित्तीय संतुलन से जोड़ने में सक्षम होगा।

इस क्षेत्र में इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए अधिकांश देशों ने सबसे पहले जिन उपकरणों का प्रयोग

किया, वे थे 1980 के दशक के स्थिरीकरण के कार्यक्रम। रूढ़िवादी और अपधर्मी किस्म के विभिन्न स्थिरीकरण कार्यक्रमों में तीन मुख्य नीतिगत कार्रवाइयों के माध्यम से सार्वजनिक खर्चे घटाना शामिल था। ये कार्रवाइयाँ थीं: सार्वजनिक क्षेत्र के वेतनों में कोई भी वृद्धि न करना, निजी क्षेत्र से संरक्षणवाद और अनुदान (subsidy) समाप्त करना, और सार्वजनिक निवेश में भारी कटौती करना। सार्वजनिक क्षेत्र में कटौती के उद्देश्य की प्राप्ति के लिए उपयुक्त नीतियों और संस्थागत बदलावों को भी लागू किया गया है। तर्क यह दिया गया था कि सार्वजनिक क्षेत्र की कटौती व्यापार का उपयुक्त वातावरण बनाने के लिए आवश्यक है। यहाँ यह बात महत्वपूर्ण है कि सार्वजनिक क्षेत्र में इन सभी संस्थागत और मानकीय कटौतियों का ध्येय निजी पूँजीवाद के उभार को सुगम बनाना है। दूसरे शब्दों में, राज्य-पूँजीवाद के स्थान पर निजी पूँजीवाद को आना है।

निश्चय ही, करेंसी सटोरियों से लेकर पोर्टफोलियो निवेशकों तक, और फेरी वालों से लेकर अति कुशल पेशेवरों तक विभिन्न श्रेणियों के उद्यमी – ये सभी बाज़ार-आधारित पूँजीवाद के आदर्श हैं। निजी व्यापारिक हित तो उत्पादनशील निवेश के लिए उत्तरदायी हैं, जबकि राज्य से अपेक्षा की जाती है कि वह उन सामाजिक तबकों के लिए राहत और सार्वजनिक सामानों पर ध्यान केन्द्रित करें जो बाज़ार-राज्य संबंध में बदलाव से सर्वाधिक दुष्प्रभावित हैं। इस प्रकार के परिवर्तनकारी संबंध के दो घटक हैं: सार्वजनिक क्षेत्र का निजीकरण, जिसका अर्थ होता है सार्वजनिक निवेश के स्थान पर राष्ट्रीय तथा विदेशी निजी निवेश। दूसरा घटक है व्यापारिक उदारवाद, जिसका अर्थ होता है अधिकतम सक्षमता के क्रियान्वयक और अनुशासक के रूप में बाज़ार का प्रयोग।

इस प्रकार विकास का उभरता नव-उदारवादी नमूना वित्तीय और मौद्रिक अनुशासन, मुक्त व्यापार और खुले बाज़ारों, और आर्थिक क्षेत्र में राज्य की न्यूनतम भूमिका पर आधारित है। विकास के इस नमूने के चलते वस्तुतः सभी देशों में दूरगामी आर्थिक परिवर्तन हुए हैं। यहाँ ध्यान देने योग्य बात यह है कि सभी अपेक्षित आर्थिक बदलाव वांछनीय अथवा उपयोगी नहीं रहे हैं। एक बात तो यह है कि सक्षम और सोद्देश्य उद्यमी सामने नहीं आए हैं, यदि आए भी हैं तो शायद कुछेक ब्राज़ील और चिली में ही आए हैं। यहीं नहीं, सार्वजनिक निवेश की बात तो छोड़िए, सही मात्रा में निजी निवेश भी लघुकालीन पोर्टफोलियो निवेश की श्रेणी के सिवाय और कहीं नहीं हो पाया है। यह कहा गया था कि बाज़ार समतावादी है; किन्तु, वास्तविकता इसके पलट है। असमानता, बेरोज़गारी, पारिवारिक तथा सामाजिक हिंसा में वृद्धि हुई है, और सामाजिक स्थिति लगातार बदतर हो रही है।

निस्संदेह, लैटिन अमेरिकी राज्य फरिश्ते नहीं थे। वे तो 'किरायाजीवी' राज्य थे, जो अधिकांश उत्पादनशील निवेश का सार-सार निकालते थे, घाटे की वित्त व्यवस्था चलाते थे, अंधाधुंध उधारी करते थे, और अक्षम व्यापारों को थोक भाव में पैदा करते थे। 1970 के दशक तक आते-आते, ये विकासवादी राज्य कमजोर हो चले थे और उनमें अर्थव्यवस्था को सुधारने अथवा वितरणकारी दबावों को रोकने की क्षमता नहीं रह गई थी। यहाँ तक कि नौकरशाही अधिनायकवादी शासनों के जोर-जबरदस्ती और हिंसा का प्रयोग करने पर भी यह आर्थिक और सामाजिक कुव्यवस्था ठीक नहीं हुई थी। किन्तु अब जो बाज़ार-पूँजीवाद का उपचार दिया जा रहा है, वह राज्य-केन्द्रित पूँजीवाद की बीमारियों से भी बदतर है।

i) आर्थिक मामलों में राज्य की सीमित भूमिका का निहितार्थ वह बाज़ार होता है जो अधिकाधिक अनियंत्रित है। 'मुक्त' बाज़ार का आदर्श सिद्धान्त राष्ट्रीय आर्थिक नीतियों और क्षेत्रीय आर्थिक एकीकरण को भी निदेशित कर रहा है। राज्य की भूमिका की कटौती केवल उत्पादनशील गतिविधियों में उसकी प्रत्यक्ष भागीदारी तक ही नहीं बल्कि बाज़ार के संगठन में राज्य की भागीदारी के अभाव तक भी सीमित है। इसका अर्थ यह होता है कि इस प्रकार के बाज़ार में

आर्थिक संसाधनों की अतिशय शक्ति में मध्यस्थता करने वाले मात्र कुछ ही ढाँचे हैं। इस प्रकार की बेलगाम और अनियंत्रित बाज़ार-शक्तियाँ आर्थिक विकास के नव-उदारवादी नमूने के लिए ही खतरा पैदा करती हैं। यहाँ एक विरोधाभास यह है कि नव-उदारवादी नमूने के लिए एक ऐसे राज्य की आवश्यकता होती है जो अपेक्षाकृत छोटा और कम हस्तक्षेप करने वाला होता है, किन्तु बाज़ारों को इस प्रकार संगठित करने की क्षमता रखता है कि निजी व्यापार के हितों को समूचे समाज की आवश्यकताओं से जोड़ सके। इसलिए, राज्य की ओर से एक नए प्रकार के हस्तक्षेप से निजीकरण की नीतियों की तुलना में लागत और लाभ का बेहतर वितरण किया जा सकता था। किन्तु नव-उदारवाद किसी राज्य-नियंत्रण के विचार का ही विरोधी है।

ii) बाज़ारों और राज्य तथा समाज़ के संबंधों के संगठन में एक संस्थागत परिवर्तन की पूर्व कल्पना है जिसका प्रयास केवल एक (छोटा ही सही किन्तु) मज़बूत राज्य ही कर सकता है। फिर भी, इसी बात की उन बाज़ारों में कमी है जो आज लैटिन अमेरिका में उभर रहे हैं।

iii) राज्य का नियंत्रण न होने के परिणामस्वरूप, आर्थिक शक्ति उन तरीकों से हावी हो गई है जो इतने हद दरजे के हैं जितने विकसित पूँजीवादी देशों में आम तौर पर नहीं होते। निजी व्यापार और निर्वाचित सरकारों की सांठगांठ, और 'उदारवादन समझौतों' जैसे 'नव-निगमवादी' नियंत्रण तंत्र व्यापारिक हितों के कठोर वर्चस्व की वास्तविकता को इंगित करते हैं। सामान्य रूप में, अर्थव्यवस्था के 'औपचारिक क्षेत्र का अनौपचारीकरण' हुआ है क्योंकि श्रम बाज़ार के नियंत्रण को अधिकाधिक बाज़ार-शक्तियों पर छोड़ दिया गया है। जिन पात्रों के पास आर्थिक संसाधनों का अभाव है, वे बाज़ार की दया पर निर्भर हैं।

iv) निरंकुश और अनियंत्रित बाज़ार तो ढांचागत समायोजनों के परिणामों को हलका करने के लिए सामाजिक सुरक्षा और अन्य कार्यक्रमों की बात करता है। गरीबी हटाने के कार्यक्रम हो सकते हैं और रोज़गार पैदा करने की योजनाएँ भी; किन्तु, गरीबी और असमानता के ढाँचों को बदलने का कोई भी विचार अब सिरे से गायब है। गरीबी और असमानता के ढाँचों को बदलने की सोचने के लिए किसी का समाजवादी अथवा क्रान्तिकारी होना ज़रूरी नहीं है। ये पूँजीवादी ढर्रे की सरकार का भी अंग समझे जाते हैं। किन्तु आर्थिक विकास के नव-उदारवादी नमूने में, ये उसके कार्यक्रम में भी नहीं हैं। बस यह आम मान्यता है कि बाज़ार-सृजित संपन्नता स्वतः ही और उचित समय में इस प्रकार की ढाँचागत चुनौतियों का समाधान कर लेगी। स्पष्ट रूप में, लैटिन अमेरिका में नव-उत्पाद इन मामलों पर चर्चा करने में भी रुचि नहीं रखता। बल्कि, यह सामाजिक संबंधों में एक द्वेषपूर्ण बाज़ार-तर्क को मज़बूत कर रहा है, जिसमें बढ़ते बाज़ारों से बन सकने वाले आर्थिक अवसरों के माध्यम से सामाजिक गतिशीलता पर जोर रहता है। बाज़ार जिस प्रमुख मूल्य को पनपा रहा है वह हैः उन समस्याओं के व्यक्तिगत और निजी समाधान जो सामूहिक और ढाँचागत किस्म की हैं।

v) अनियंत्रित बाज़ार के प्रभुत्व का दूसरा पहलू है व्यापारिक हितों, विशेषकर उन व्यापारिक हितों का बढ़ता प्रभाव जो लैटिन अमेरिकी देशो में अन्तर्राष्ट्रीय वित्त बाज़ार से संबद्ध हैं। उनके प्रचुर आर्थिक संसाधन और आर्थिक विकास के वाहक की उनकी स्थिति उन्हें राजनीतिक दृष्टि से अत्यधिक प्रभावशाली और शक्तिशाली बनाती है। जब तक उनका प्रभाव और शक्ति संस्थागत रूप में है - जैसे, सरकार - व्यापार परिषदों आदि के माध्यम से - तब तक यह सकारात्मक है। यह स्वागत-योग्य कदम भी हो सकता है क्योंकि विकास के राज्य-केन्द्रित नमूनों के अंतर्गत राज्य-व्यापार के साझा धरातल के लिए अधिक संस्थागत तंत्र नहीं थे। किन्तु यदि निजी व्यापार के ऐसे प्रभाव और शक्ति का प्रयोग कम औपचारिक साधनों और/अथवा अलोकतान्त्रिक साधनों

के माध्यम से होता है - जैसा कि अनेक देशों में हो सकता है - तो यह स्थिति अत्यंत खतरनाक है। आसान शब्दों में, बाज़ार-शक्तियाँ औपचारिक रूप में जबावदेही से मुक्त राज्य-शक्ति तक पहुँचने का दुस्साहस तब तक कर सकती हैं जब तक राज्य उनके प्रति अनौपचारिक रूप में जबावदेह है।

vi) विकास के नव-उदारवादी नमूने में आर्थिक संसाधनों के प्रभुत्व का एक उपोत्पाद है उन पात्रों के राजनीतिक प्रभाव में सहगामी गिरावट जिनका प्रतीकात्मक अथवा वैचारिक संसाधनों पर नियंत्रण के कारण औपचारिक रूप में अत्यधिक प्रभाव था। चर्च और वामपंथी रूझान वाले राजनीतिक दलों के राजनीतिक प्रभाव में गिरावट इसका स्पष्ट प्रमाण है। इससे भी महत्वपूर्ण शायद यह बात है कि जिन पात्रों में राज्य की मशीनरी, विशेषकर सेना, पर अपनी पकड़ और पहुँच के माध्यम से जबरदस्त शक्ति हासिल की हुई थी, उनका ही काफी पतन हो गया था। विशेषकर सेना ही अधिकांश मामलों में अपने आर्थिक संसाधनों पर नियंत्रण की कमी का नुकसान उठाती आ रही है, जिसके कारण संकट के समय में इसकी राजनीतिक भूमिका की पारंपरिक सत्ता के दलाल वाली रह जाती है। अब उस महान भू-राजनीतिक दृष्टि और विकास परियोजनाओं के बारे में कुछ सुनने को नहीं मिलता जिनको विकास के राज्य-केन्द्रित नमूने के युग में सशस्त्र सेनाओं ने विकसित किया था। यह सोचकर हैरानी होती है कि बाज़ार के प्रभुत्व वाले राज्यतंत्रों में सशस्त्र सेनाओं के जैसे राष्ट्रीय मिशन क्या हैं। इसके अतिरिक्त, सशस्त्र सेनाओं की स्थिति इस बात का एक और उदाहरण है कि नव-उदारवाद कोई विकल्प नहीं छोड़ रहा है, कम से कम कभी तो नहीं।

vii) बाज़ार सामाजिक अपवर्जनकारी नीतियों पर आधारित होते हैं और उन्हीं का पालन करते हैं, और राज्य इस बारे में कुछ नहीं कर सकते। जहाँ मुख्यतः अर्थव्यवस्था के अनौपचारिक क्षेत्र में नौकरियों की बढ़ोतरी ने कुछ देशों में गरीबी की दर घटाने में योगदान किया है, वहीं आटा-वितरण पर इसके प्रभाव अत्यंत सीमित रहे हैं। आज तक के सभी अनुभव-आधारित प्रमाण यही दर्शाते हैं कि लैटिन अमेरिका की सामाजिक असमानता की ऐतिहासिक समस्या का समाधान ढूंढ़ने की असरदार कोशिश नई आर्थिक नीतियों में नहीं की गई है। इससे यह सच्चाई सामने आती है कि गरीबी में कमी लगभग पूरी की पूरी सामाजिक नीतियों के कारण नहीं बल्कि आर्थिक विकास के परिणामस्वरूप आई है। किन्तु, मैक्सिको, ब्राज़ील और अर्जेन्टीना के लगातार वित्तीय क्षरण यह बताते हैं कि इस तरह के काम अत्यंत अस्थायी और खतरनाक हो सकते हैं। चिली जैसी 'सफल' अर्थव्यवस्थाओं में भी सामान्यतः रोज़गार की खतरनाक स्थिति इस प्रकार के बाज़ार-विकास की एक महत्वपूर्ण विशेषता है।

कुल मिलाकर इस पूरे क्षेत्र में उभर रहे बाज़ारों की विशेषता हैः नगण्य नियंत्रण, राज्य का न्यूनतम हस्तक्षेप, उदारवादी व्यक्तिवाद की वृद्धि (जो समाज के अपेक्षाकृत सामूहिक दृष्टिकोण के विपरीत है), और एक नितांत व्यापार-समर्थक झुकाव - विशेषकर विदेशी स्वामित्व वाले बड़े व्यापार के प्रति। इस प्रकार के बाज़ार एक विचित्र प्रकार के पूँजीवाद का समर्थन कर रहे हैं, जिनकी प्रवृत्ति औरों को हड़पने की है। यह वह पूँजीवाद है जो उन लोकवादी क्षेत्रों और प्रतिस्पर्धाहीन उद्योगों का शिकार करता और उन पर फूलता-फलता है जिनके पास आर्थिक संसाधन नहीं हैं। यह अपने नीतिगत सुझावों के माध्यम से राज्य को संसाधनों से वंचित कर देता है, और सामान्य कल्याण तथा सामाजिक जीवन के महत्वपूर्ण पहलुओं को भी नुकसान पहुँचाता है। यह एक प्रक्रिया है जिसकी अपनी गतिशीलता है और जो विषय रूप में उन्हें पुरस्कृत करती है जिनके पास पहले से ही अधिकार हैं, विशेषकर आर्थिक अधिकार। यह हिंसक पूँजीवाद पाश्चात्य पूँजीवादी जगत के उन्नीसवीं शताब्दी के अंत और बीसवीं शताब्दी के प्रारंभ में हिंसक पूँजीवाद की याद दिलाता है। श्रम और अन्य शक्तिशाली सामाजिक तथा राजनीतिक

कारकों के उभार ने उस प्रकार के हिंसक पूँजीवाद पर लगाम कसने का काम किया था और वह कल्याणकारी राज्य की स्थापना करने में सफल रहा था। आशा की जाती है कि वर्तमान हिंसक पूँजीवाद का भी यही हश्र होगा। विभिन्न आन्दोलनों, विशेषकर महिलाओं, स्थानीय समुदायों और पर्यावरणविदों के आन्दोलनों का प्रसार नए संबंध बनाने और नई राज्य-संस्थाएँ स्थापित करने की दिशा में काम कर रहा है, और आशा है कि यह आज के हिंसक पूँजीवाद के सभी नहीं तो अनेक घातक तत्वों को सही कर सकता है।

किन्तु इस प्रकार की प्रति-प्रतिक्रिया होना अनिवार्य नहीं है। निकट भविष्य में तो निश्चय ही नहीं, किन्तु इस तरह की शक्तियों के उभार की संभावना तो है। नागरिक समाज के विखंडित और अव्यवस्थित होने और संगठित श्रम तथा वामपंथी रुझान वाली राजनीतिक पार्टियों जैसे पात्रों के कमज़ोर पड़ने से ऐसे किसी पात्र (कारक) अथवा पात्रों (कारकों) की पहचान करना कठिन है जो आज हिंसक पूँजीवाद को रोकने या संशोधित करने के लिए प्रभावी ढंग से दबाव डाल सकते हैं। प्रसंगवश, उन पात्रों अथवा कारकों को बीसवीं शताब्दी के प्रारंभ में हिंसक पूँजीवाद को कमज़ोर करने का श्रेय जाता है। संक्रमण के दौर में जिन सामाजिक आन्दोलनों ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई थी, उन्हें आज लोकतंत्र की ओर संक्रमण की प्रक्रिया पूरी हो जाने के बाद नए राजनीतिक तथा आर्थिक संदर्भों से समायोजन करने में कठिनाई हो रही है। और फिर, यह स्पष्ट नहीं है कि यदि इस तरह के बदलाव कभी आते भी हैं तो उनका परिणाम क्या होगा। बीसवीं शताब्दी के प्रारंभ में मैक्स वेबर, कार्ल मार्क्स और केन्ज़ के विचारों को उन अनेक विकल्पों को स्पष्ट करने में कामयाबी मिली थी जिन्हें प्रति राजनीतिक पात्रों ने ग्रहण किया था। आज, जैसा कि भूमंडलीकरण-विरोधी विचारों और आन्दोलनों से स्पष्ट है, प्रति बुद्धिजीवी प्रतिक्रिया अपने शैशव काल में है। और फिर लैटिन अमेरिका कोई यूरोप नहीं है। बीसवीं शताब्दी के आगमन के समय, यूरोप तो हिंसक पूँजीवाद पर लगाम कसने में कामयाब हो गया था किन्तु लैटिन अमेरिका इसका सबसे बड़ा शिकार था। आज भी वहीं कहानी है; और आज जब लोकतंत्र उस प्रकार के बेलगाम हिंसक पूँजीवाद के अभियान को जायज ठहराने में लगे हैं तो स्थिति और भी खराब हो सकती है।

7.3 राज्य का पतन और इसकी क्षमताओं का पुनर्गठन

बाज़ार-आधारित अर्थव्यवस्थाओं के चलते राज्य की क्षमताओं में गिरावट और उसकी घटती भूमिका लैटिन अमेरिका के लिए ऐतिहासिक महत्व की घटना है। राज्य को स्वाधीनता से ही ऐसी स्थिति का सामना नहीं करना पड़ा है। 'राजनीतिक' और 'सार्वजनिक' का लैटिन अमेरिका में हमेशा ही एक विशेष अर्थ रहा है। राज्य और उसके विरोधियों, इन दोनों के लिए ही राजनीति वांछित ढाँचागत बदलाव का एक साधन रही है। राजनीति चाहे हिंसक अथवा संसदीय तरीके से चलाई गई हो, उसका उद्देश्य हमेशा ही राज्य के ढाँचों पर कब्ज़ा जमाना रहा है। राज्य ही विकास और लोकतंत्र को अथवा उसके उलटाव को संभव करता रहा है।

उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्ध से संसाधन निर्यात में आया उछाल अत्यधिक केन्द्रीकृत अधिनायकवादी राज्य के कारण ही संभव हुआ। राज्य ने लोगों के बड़े तबकों को ज़ोर-ज़बरदस्ती से बाहर करके और हाशिये पर डालकर राजनीतिक स्थिरता और आर्थिक विकास दोनों को ही संभव बनाया था।

विकासवाद के युग में राज्य और भी अधिक केन्द्र में था। इसने समावेशन-अपवर्जन के मुद्दे, विभिन्न सामाजिक वर्गों और राजनीतिक पात्रों की हैसियत और ताकत का फैसला करके राजनीति को आकार दिया था। लोकवाद के दौर में यह विशेष रूप में हुआ। राज्य की भूमिका केवल आयात स्थानापन्न (विकल्प) औद्योगीकरण (Import Substitution Industrialisation – ISI) की सफलता में नहीं बल्कि

संसाधनों के पुनर्वितरण में भी निर्णायक थी। एल्बर्ट हिर्शमान ने "स्थिति के सामाजिक और राजनीतिक सांचे" के विषय में लिखा है। विकासवादी राज्य ने पुनर्वितरणकारी नीतियों को मुख्यतः स्फीति और अन्य आर्थिक उपायों के माध्यम से प्रभावित किया था। "स्फीति के अन्तर्गत राज्य की मध्यस्थता की प्रक्रिया आती थी जो सार्वजनिक नीतियों के स्वामित्वहरणकारी और पुनर्वितरणकारी प्रभावों पर आंशिक रूप से पर्दा डाल देती थी।" जैसा कि अन्यत्र कहा गया है, 'राजनीतिकरण का राज्यवादी नमूना' अंतर्निहित अस्थिरता का शिकार था और उसमें प्रतिस्पर्धी हितों और माँगों के बीच एक स्थायी सर्वसम्मति बनाने की संभावना नहीं के बराबर थी। लोकवादी शासनों की यही नियति रही क्योंकि लोकवादी गठबंधन या तो टकराव की ओर ले जाने वाली लामबंदी के बीच टूट गए अथवा अधिनायकवादी शासनों ने आर्थिक वृद्धि को प्रभावित करने के लिए ज़ोर-ज़बरदस्ती और अपवर्जन को आपस में मिला दिया था। किन्तु, विकास को प्राथमिकता देने के बावजूद वे पुनर्वितरण के लक्ष्य को नहीं छोड़ पाए। राज्य की ज़ोर-ज़बरदस्ती की शक्ति का प्रयोग करके सैनिक शासनों ने मौजूदा सामाजिक संतुलन को फिर से सक्रिय करने का प्रयास किया था, और इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए उन्होंने जन-साधारण मज़दूर तबके की अपेक्षा बड़े व्यापारों को प्राथमिकता दी थी। यहाँ दिलचस्प बात यह है कि अपनी 'राजनीति-विरोधी' राजनीति के बावजूद सैनिक शासन राजनीति के महत्व को कम नहीं कर पाए, और यह लोकतान्त्रिक संक्रमण की प्रक्रिया शुरु होने के बाद पूरे ज़ोर-शोर से चल निकली।

7.4 बाज़ार, राज्य और समाज

कुछ दूरगामी महत्व वाला एक उल्लेखनीय बदलाव यह है कि नव-उदारवाद और लोकतंत्र, ये दोनों ही लैटिन अमेरिका में 'राजनीति' और 'सार्वजनिक' के ऐतिहासिक महत्व को कम करने में लगे हुए हैं। नव-उदारवादियों और लोकतंत्रवादियों, इन दोनों के लिए ही राजनीति अब विक्षोभकारी और त्याज्य साबित हो रही है। वास्तव में, राज्य की घटती भूमिका का मतलब राजनीति के महत्व का लगातार गिरता जाना होता है। 1980 और 1990 के दशकों के अनेक चुनावी शासन एक स्पष्ट 'राजनीति-विरोधी' लहर पर सवार होकर ही सत्ता में आए थे।

अब राजनीति जब अपने ऐतिहासिक ऊँचे स्थान से नीचे आ रही है तो एक राजनीतिक और बौद्धिक निराशा और उलझन तब हर ओर दिखाई देती है जब बाज़ारीकरण और लोकतंत्रीकरण के सामाजिक परिणामों को चुनौती देने की बात आती है। चुनावी लोकतांत्रिक राजनीति और बाज़ारोन्मुख आर्थिक नीतियों के उभरते स्वरूप यह प्रमाणित कर रहे हैं कि वे सामाजिक जुड़ाव और शांति में सहायक नहीं हैं। नव-उदारवाद भी सामाजिक अलगाव और विनाश को जन्म दे रहा है। आजीविका के पारम्परिक स्वरूप नष्ट कर दिए गए हैं, समुदाय-विशेषकर स्थानीय और ग्रामीण समुदाय - विस्थापित हो गए हैं और इससे भी अनिष्टकारी स्थिति यह है कि सामाजिक समस्याओं के समाधान के सार्वजनिक दृष्टिकोण की जगह एक अधिकाधिक व्यष्टिवादी और निजी दृष्टिकोण ने ले ली है। लोकतंत्र बस कार्यविधि तक सिमट कर रह गए हैं क्योंकि अधिनायकवाद उभर आया है और भ्रष्टाचार, "यारबाजी", और ज़ोर-ज़बरदस्ती के मिले-जुले बोझ ने प्रतिनिधित्व, जबावदेही और नियंत्रण और संतुलन के संस्थागत तंत्रों को बेहद कमज़ोर कर दिया है।

लोकतंत्र और नव-उदारवाद एक ऐसे संदर्भ में काम कर रहे हैं जहाँ लैटिन अमेरिकी समाज को अनेक संकटों का सामना करना पड़ रहा है। गहरी आर्थिक असमानताओं और गरीबी के ऐतिहासिक स्परूप और भी मज़बूत होते जा रहे हैं। आर्थिक नीतियों का ज़ोर जनता के बड़े तबकों को बाज़ार से बाहर करने पर है। 1990 के दशक के दौरान हुई थोड़ी आर्थिक बहाली के बावजूद अधिकांश लोगों के लिए अब यह 'दो व्यर्थ दशक' की स्थिति रही है।

उन्नीस सौ सत्तर के दशक के दौरान गिरने के बाद गरीबी की दर 1980 के दशक की मंदी के दौरान बढ़ गई थी। 1990 के दशक की छिटपुट आर्थिक बहाली के साथ ही उसमें और वृद्धि हो गई। लैटिन अमेरिका और कैरिबयाई क्षेत्र के लिए संयुक्त राष्ट्र के आर्थिक आयोग (UN Economic Commission for Latin America and the Caribeean – ECLAC) ने 17 लैटिन अमेरिकी देशों की जो वार्षिक रिपोर्ट *'सोशल पैनोरमा ऑफ लैटिन अमेरिका 2000-2001'* आई, उसमें यह अनुमान प्रस्तुत किया गया है कि 1990 के दशक के अंत में 43.8 प्रतिशत लैटिन अमेरिकी गरीबी में रह रहे थे, और उनमें से लगभग 18.5 प्रतिशत तंगहाली में जी रहे थे। 1999 में, गरीब लोगों का प्रतिशत 1980 के मुकाबले कहीं अधिक था, और 21.1 करोड़ लोग इस हालत में रह रहे थे, और उनमे से 8.9 करोड़ लोग गरीबी की रेखा से नीचे जी रहे थे। 1970 के दशक में गिरने के बाद, गरीबी का स्तर बढ़ता ही गया है, और 48 प्रतिशत लोग विभिन्न स्तर की गरीबी झेल रहे हैं। 1999 में, 35 प्रतिशत घरों में बुनियादी ज़रूरतों का सामान भी नहीं था और 14 प्रतिशत लोगों की आमदनी इतनी भी नहीं थी कि सादा खाना भी खरीद सकें। गाँवों में गरीबी का स्तर (54 प्रतिशत घर) शहरों की अपेक्षा (30 प्रतिशत घर) ऊँचा ही बना हुआ है। कुछ देशों में स्थिति और भी खराब है; उदाहरण के लिए, मैक्सिको में लगभग 60 प्रतिशत लोग 1998 में गरीबी में रह रहे थे। वेनेज़ुएला में, गरीब घरों का प्रतिशत 1981 के 22 से बढ़कर 1990 में 34 हो गया, और 1999 में यह 44 प्रतिशत हो गया। आर्थिक सर्वेक्षणों में लैटिन अमेरिका की विशाल युवा जनसंख्या की प्रशंसा अक्सर उदारीकृत अर्थव्यवस्थाओं के संभावी उपभोक्ताओं के रूप में की जाती है। किन्तु, आँकड़े बताते हैं कि गरीबी में जी रहे 20 वर्ष से कम उम्र के बच्चों की कुल संख्या 1990 के 11 करोड़ से बढ़कर 1999 में 11.4 करोड़ हो गई थी।

लैटिन अमेरिका के आर्थिक आयोग (Economic Commission of Latin America – ECLA) की रिपोर्ट के अनुसार, आय का असमान वितरण "क्षेत्र के सामाजिक और आर्थिक ढाँचों की प्रमुख विशेषता" बनी हुई है, और इन ढाँचों को कम से कम अल्प और मध्यम अवधि में बदलना लगभग असंभव है। इस क्षेत्र की आबादी का निर्धनतम 20 प्रतिशत कुल आय का मात्र 4.5 प्रतिशत कम रहा था, और 1990 के दशक की आर्थिक बहाली का कोई प्रभाव सबसे निचले तबके पर नहीं पड़ा है। इसके विपरीत, आमदनी की असमानताएँ और बढ़ गई हैं, और आबादी का 10 प्रतिशत निर्धनतम तबका राष्ट्रीय आय में लगातार घटते हिस्से पर ही अटका हुआ है। अधिकतम संसाधनों वाले 10 प्रतिशत घरों में कुल आय के उस हिस्से पर कब्ज़ा जमाया हुआ था जो 40 प्रतिशत निर्धनतम घरों की आय की तुलना में औसतन 19 गुणा अधिक था। अलग-अलग देशों में, दो-तिहाई से तीन-चौथाई आबादी की प्रति व्यक्ति आय सामान्य औसत से भी कम है। बोलिविया, ब्राज़ील और निकारागुआ जैसे जिन देशों में असमानता सबसे अधिक है, सर्वाधिक धनी 20 प्रतिशत घरों की आय 1990 के दशक में निर्धनतम घरों की आय की तुलना में तीस गुणा से भी अधिक बढ़ गई। आर्थिक वृद्धि का इस स्थिति से अधिक कुछ लेना-देना नहीं है, और इसका प्रमाण यह तथ्य है कि 1997-99 की आर्थिक बहाली के दौरान आय की असमानता और भी बढ़ी है। ऐसा एक सबसे खराब उदाहरण ब्राज़ील का है जहाँ 10 प्रतिशत सबसे अमीर घरों ने राष्ट्रीय आय के लगभग 45 प्रतिशत हिस्से पर कब्ज़ा किया हुआ है।

फिर 1990 के दशक में इसमें 4.4 करोड़ की और वृद्धि हो गई हैं, और कार्यशक्ति लगभग 21.2 करोड़ पर पहुँच गई है। किन्तु रोज़गार की संभावनाएँ अभी भी धूमिल बनी हुई हैं। हलकी-सी आर्थिक वृद्धि के तीन वर्षों (1997-99) में, क्षेत्रीय बेरोज़गारी में प्रति वर्ष 10.1 प्रतिशत की दर से बढ़ोतरी हुई। शहरी मध्यम और मज़दूर वर्गों की कमाई 1990 के दशक की आर्थिक बहाली के बावजूद काफी नीचे आ गई थी। एक 'जाली' तृतीयक क्षेत्र का विस्तार हुआ है। 'अनौपचारिक क्षेत्र' के नाम से भी ज्ञात यह क्षेत्र राष्ट्रीय आबादी के एक बड़े प्रतिशत की शरण-स्थली बना हुआ है। बेरोज़गारी, अनिश्चित

रोज़गार और मौसमी रोज़गार अधिकांश जनसंख्या के लिए मानक हैं, क्योंकि श्रम बाज़ार के सुधार लागू हो रहे हैं। लैटिन अमेरिका और कैरिबियाई क्षेत्र के लिए संयुक्त राष्ट्र के आर्थिक आयोग की रिपोर्ट के अनुसार 1990 के दशक में नौकरियों का स्तर गिरा है; शहरों में प्रत्येक दस नई नौकरियों में से सात अनौपचारिक क्षेत्र में सृजित हो रही हैं। यह बीमारी तथाकथित मध्यम आय वाले क्षेत्रों को भी लग गई है जिससे बेरोज़गारी की अवधि लंबी हो गई है और कम आय की नौकरियों में फिर से रोज़गार पाना एक मानक नियम बन गया है। परिणामस्वरूप, "ऋण संकट के दौर (1981-83) में लैटिन अमेरिका में जो भी सामाजिक एकरूपता रही हो, 1985 से सामाजिक विविधता बढ़ती ही गई है।" कई देशों में लगभग आधी कामगार आबादी अनौपचारिक अर्थव्यवस्था पर जी रही है; अन्यत्र, विशेषकर ऐंडियन देशों में, स्थिति और भी खराब दिखाई देती है।

लैटिन अमेरिका और कैरिबियाई क्षेत्र के लिए संयुक्त राष्ट्र के आर्थिक आयोग के अनुसार "एक व्यक्ति के जीवन के अधिकांश अवसर इस बात से तय होते हैं कि उस जीवन की शुरुआत कैसे होती है।" और "बहुविध माध्यमों से होकर एक से दूसरी पीढ़ी तक जनित अत्यधिक विखंडित आर्थिक, सामाजिक, लैंगिक और जातीय ढांचे" अभी भी ढांचागत असमानता में दिखाई दे रहे हैं।" लैटिन अमेरिका और कैरिबियाई क्षेत्र के लिए संयुक्त राष्ट्र के आर्थिक आयोग का प्रस्ताव है कि "उन अंतरपीढ़ीय माध्यमों को अवरुद्ध किया जाए जिनसे होकर गरीबी और असमानता संप्रेषित होती हैं, और इनमें लैंगिक और जातीय भेदभाव के अवरोध भी शामिल हैं।" किन्तु, यह एक ऐसा काम है जो चुनावी लोकतंत्र अथवा आर्थिक उदारवाद की कार्यसूची में शामिल नहीं हैं, मध्यम काल में भी नहीं। श्रम नियंत्रणों का बदलाव एक ऐसी कार्यशक्ति (श्रमिक संख्या) को पैदा कर रहा है जो कम कुशल, अल्प वेतनभोगी, यूनियन से वंचित, और अधिकतर भूख से पीड़ित हैं; और वह उत्पादन के भूमंडलीकृत ढांचों वाले लैटिन अमेरिकी श्रम एकीकरण का स्वरूप है। निस्संदेह, उदारीकरण की प्रक्रिया से गुज़र रही किसी भी अर्थव्यवस्था की सार्वजनिक नीति का इससे सरोकार नहीं है। विद्वानों के विश्लेषणों में अनौपचारिक स्तर की स्वावलंबन और समुदाय-आधारित पहलों को ज़मीनी स्तर के नए आन्दोलनों की शुरुआत और नागरिक समाज के परिपक्व होने की अवस्था बताया जा रहा है। ये चाहे जितने भी प्रशंसनीय हों, किन्तु ये केवल आंशिक, स्थानिक और अक्सर अस्थायी परिवर्तन हैं जिनसे व्यापक स्तर की सार्वजनिक नीतियाँ बनने की अपेक्षा नहीं की जा सकती।

समस्या आर्थिक विकास के अभाव अथवा विकास की धीमी दरों की नहीं है; बल्कि ये तो ढांचागत किस्म की हैं। और जब बाज़ार ऐसे ढांचों को मज़बूत कर रहा है जिनसे असमानता और गरीबी पैदा होती है, तो चुनावी लोकतंत्र चुनौतियों का सामना कैसे कर सकता है? क्या इसमें इन चुनौतियों से निपटने का आवश्यक इच्छा शक्ति है? निर्वाचित सरकारों का तो यह आम रवैया है कि वे अपने चुनावी वादों को भूल जाती हैं और मितव्ययता के कठोर उपाय लागू कर देती हैं। केवल सार्वजनिक सेवाओं और सुविधाओं में गिरावट ही नहीं आई है बल्कि जो उपलब्ध हैं भी उनकी ऊँची कीमत चुकानी पड़ती है। सेवाओं के निजीकरण से शिक्षा और चिकित्सा जैसी बुनियादी सुविधाएँ भी आम जनता की पहुँच से बाहर हो गई हैं, और सुविधाओं में गिरावट ही नहीं आई है बल्कि जो उपलब्ध हैं भी उनकी ऊँची कीमत चुकानी पड़ती है। सेवाओं के निजीकरण से शिक्षा और चिकित्सा जैसी बुनियादी सुविधाएँ भी आम जनता की पहुँच से बाहर हो गई हैं, और उनका रुख अमीर और संपन्न लोगों की ओर हो गया है। जैसा कि हम पहले बता चुके हैं, पुराने सामाजिक स्वरूपों में अलगाव आ गया है और वे गायब हो रहे हैं। अनौपचारिक क्षेत्र के विस्तार ने मज़दूर की संगठित होने, लामबंदी करने और सत्ता के गलियारों तक पहुँचने की सामर्थ्य को बेहद कमज़ोर कर दिया है। छोटे और निर्वाह-कृषि पर आधारित किसानों पर सबसे बुरा प्रभाव पड़ा है क्योंकि राज्य का सहारा और निवेश लगभग गायब हो चुके हैं। सबसे खराब स्थिति तो यह है कि निर्यात को बढ़ावा देने की नीतियों के कारण भूमि का फिर से

संकेन्द्रण हो रहा है, और कभी-कभी तो इसके लिए पारम्परिक समुदायों को विस्थापित तक किया जा रहा है। मुक्त बाज़ार के क्रियाशील होने का एक मुख्य परिणाम यह हुआ है कि सभी वर्गों, समुदायों, आर्थिक क्षेत्रों और यहाँ तक कि देशों के विभिन्न क्षेत्रों के बीच ही 'विजेताओं' और 'पराजितों' के बीच खाई बढ़ती जा रही है। परिवार जैसी सामाजिक संस्थाओं में बदलाव हो रहे हैं और वे नई और सशक्त चुनौतियों का सामना कर रही हैं। ऐसे परिवारों की संख्या बढ़ रही हैं जिनकी मुखिया महिलाएँ हैं; 1990 के दशक के अंत में एक-चौथाई से एक-तिहाई परिवारों की मुखिया महिलाएँ थीं। श्रम बाज़ार में महिलाओं की भागीदारी के अतिरिक्त, लैटिन अमेरिका और कैरिबियाई क्षेत्र के लिए संयुक्त राष्ट्र के आर्थिक आयोग ने घरेलू हिंसा में उल्लेखनीय वृद्धि और परिवारों के टूटने पर और इस बात पर भी चिंता जताई है कि इन मुद्दों पर कोई सार्वजनिक बहस नहीं हो रही है।

7.5 राज्य के लिए संभावनाएँ

अनियंत्रित बाज़ार केवल समाज में उथल-पुथल और विनाश का कारण बन रहे हैं। नव-उदारवाद के अंतर्गत राज्य अपनी अव-संरचनात्मक शक्तियों और कार्यों से हाथ धो रहा है। वहीं राज्य की महत्वपूर्ण संस्थाओं को हथियाने और उनका निजीकरण करने के सफल प्रयास भी हो रहे हैं। बाज़ारों में न तो रुचि है और न ही क्षमता, और राज्य के साथ उसकी विषम माँगों और हितों को साधने की क्षमता भी समाप्त हो रही है। परिणामस्वरूप, उभरते शक्ति संतुलन में प्रतिपक्ष के लिए कोई गुजांइश या सब्र नहीं है और राजनीतिक संस्थाएँ कानून के राज और सार्वजनिक जबावदेही में सहायक नहीं हो पा रही हैं। विकास को सुनिश्चित करने, वितरण के दबावों से निपटने, कानून और व्यवस्था को बनाए रखने, प्रशासन की जबावदेही और पारदर्शिता कायम रखने, संस्थाओं की प्रतिनिधिक छवि को बरकरार रखने, और नैतिक नेतृत्व तथा राष्ट्रीय दिशा देने के संदर्भ में राज्य की क्षमता में आई गिरावट से मंडराता अधिनायकवाद सतह पर आ गया है। चुनावी वादों से मुकरना, राज्यादेशों से शासन करना, घिराव की स्थिति, नागरिक अधिकारों का निलंबन, राजनीतिक दलों का पतन, निगमों का महंगे चुनावी अभियानों में पैसा लगाना, और मीडिया का प्रत्याशियों को 'मुक्तिदाता' बताना वे समस्याएँ हैं जिनका सामना मितव्ययता के कठोर उपायों तले कराहता मतदाता कर रहा है।

ढाँचागत समायोजन की सफलता इस बात पर निर्भर करती है कि अपने नागरिक समाज पर राज्य का कितना अधिकार है। अधिकांश देशों में बाज़ारोन्मुख पुनर्गठन से सरकार और निगम क्षेत्र के बीच एक संस्थागत साझेदारी के अवसर बने हैं, जिससे भूमंडलीय बाज़ार-शक्तियों के साथ घरेलू अर्थव्यवस्था के समायोजन और एकीकरण की राह आसान होती है। किन्तु, राज्य और जनता के तबकों के बीच साझेदारी नहीं बन पा रही है, यद्यपि शासन औपचारिक रूप में लोकतांत्रिक हैं। लोकतंत्र और व्यापक समाज के अस्तित्व के लिए इसके गंभीर परिणाम होते हैं। जहाँ राज्य बाज़ार-सुधारों का प्रयास कर रहा है, वहीं बाज़ार स्वयं सामाजिक आवश्यकताओं के प्रति उदासीन बने हुए हैं। बार-बार खड़े होते आर्थिक संकटों के परिणाम सामाजिक और आर्थिक क्षेत्रों में स्पष्ट दिखाई देते हैं, राज्य की वैधता ही दांव पर लग जाती है, और महत्वपूर्ण सामाजिक समझौते के लिए मुश्किल से बनाई गई जगह को खतरे में डाला जा रहा है।

आर्थिक उदारवाद से 30 से 40 प्रतिशत क्षेत्रीय कामगारों को एकीकृत करने की सामर्थ्य नहीं है; और यह बाज़ार की आचार संहित में भी नहीं आता। किन्तु इसके साथ ही, लोग वितरण की कुछ नीतियों के प्रभावी होने के लिए समायोजन के अनुमानित 15-20 वर्षों तक प्रतीक्षा नहीं कर सकते। इससे सहाशयतापूर्ण नीतियों की भी सीमाओं का पता चलता है। मतदाताओं की बढ़ती उदासीनता और बाज़ार की हिंसक प्रकृति से यह प्रमाणित हो जाता है कि यह स्थिति लोकतंत्र अथवा आर्थिक उदारवाद के लिए अच्छी नहीं है।

क्योंकि समाजों में अलगाव आ रहा है, इसलिए एकीकृत अर्थव्यवस्थाएँ भी औद्योगीकृत देशों के चक्र के प्रति अधिक संवेदनशील हो गई हैं। इसीलिए, वित्तीय संकटों के दौरान आय की असमानताएँ बढ़ी ही हैं; उदाहरण के लिए मैक्सिको में 1994-95 में, ब्राज़ील में 1997-98 में, और अर्जेन्टीना में 2001-02 में। 1945-1980 की अवधि में क्षेत्र की आर्थिक विकास दर औसतन 5.5 प्रतिशत थी। यदि इसे सूचकांक माना जाए तो 1990 के दशक की 3.2 प्रतिशत की औसत वार्षिक वृद्धि से बाज़ार-अर्थव्यवस्थाओं की कोई बहुत अच्छी तस्वीर नहीं बनती, और वह ऊँची कीमत भी उचित नहीं ठहरती जो लैटिन अमेरिका के सामाजिक कल्याण और लोकतांत्रिक स्वतंत्रता के संदर्भ में अदा कर रहा है। 1997 और 2002 के बीच हुई हलकी-सी बहाली के बाद, इस क्षेत्र का सकल घरेलू उत्पाद (Gross Domestic Product – GDP) 2001 में मात्र लगभग दो प्रतिशत बढ़ा है; और 2001 से भूमंडलीय आर्थिक मंदी के चलते निर्यात में कमी आई है और व्यापार की शर्तें सभी के लिए, विशेषकर आवश्यक उपभोक्ता सामग्री का निर्यात करने वाले देशों के लिए, बदतर हो गई हैं। 2002 के प्रारंभ में, लैटिन अमेरिका दो दशकों की अपनी उच्चतम बेरोज़गारी दर का सामना कर रहा था; यह पिछले छह वर्षों में मंदी का तीसरा दौर था, और इसमें उसके निर्माण-उत्पादन क्षेत्र का लगभग सफाया हो गया था। नकदी की कमी, कर्ज़ और मंदी से प्रभावित अर्थव्यवस्थाओं को संकट से उबारने की क्षमता अब अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष (International Monetary Fund – IMF) की एकमुश्त मदद में भी नहीं रह गई है। वित्तीय उदारीकरण और पूँजी-बाज़ारों ने इस क्षेत्र को विदेशी निवेश को आकर्षित करने और अपनी निवेश परियोजनाओं के वित्त पोषण की अपनी क्षमता का विस्तार करने की छूट दे दी है, किन्तु साथ ही उन्होंने लैटिन अमेरिका के भीतर या बाहर पैदा होने वाले वित्तीय संकट के फैलने की राह भी आसान कर दी है। वित्तीय संकट अब और जल्दी-जल्दी पैदा होने लगे हैं, वे अधिक गंभीर हो गए हैं, और उनमें और अधिक नियमितता आ गई है। मुक्त हुए निवेश वाले शासनों और पूँजी-बाज़ारों ने काफी सट्टा पूँजी को आकर्षित किया है। वित्तीय संकट घरेलू ब्याज दरों, विनिमय दर के अवमूल्यन अथवा पुनर्मूल्यन की अपेक्षाओं, स्फीति संबंधी दबावों, और खर्चों को प्रभावित कर रहे हैं। पूँजी के उदारीकृत आगमन और निर्गमन ने कर्ज़दारी, अधिक अटकल और कम उत्पादन वाली आर्थिक गतिविधियों, छोटी फर्मों के परिसमापन, अतिरिक्त उपभोग, बेरोज़गारी और अनिश्चित रोज़गार, गरीबी के ऊँचे स्तरों, कम बचत, और पूँजी के पलायन को बढ़ावा दिया है। संकट की स्थिति इस क्षेत्र में स्थायी हो गई है, क्योंकि नव-उदारवाद ने घूसखोरी और बड़ा बनने के रास्ते खोल दिए हैं। अर्जेन्टीना और पेरू इसके उदाहरण हैं; भूतपूर्व राष्ट्रपतियों को भ्रष्टाचार और गबन के लिए ढूंढ़ा जाता है।

यहाँ दो और पहले ध्यान देने योग्य हैं: पहला, अर्थव्यवस्था का भूमंडलीकरण एक विकृत अर्थ में कार्यशक्ति (श्रमिक संख्या) का भी भूमंडलीकरण कर रहा है। अधिकाधिक अवैध और अभी तक अछूते मैक्सिको तथा ग्वाटेगाला जैसे देशों के वे स्वदेशी समुदाय संयुक्त राज्य अमेरिका की ओर आकर्षित हो रहे हैं। मानक श्रम अधिकारों से वंचित लाखों मज़दूरों का "मैकिलाइज़ेशन" (Maquilisation), अनौपचारिक क्षेत्र का भूमंडलीकृत उत्पादन व्यवस्था में 'उप-ठेकेदारी' के माध्यम से विलय, श्रमिकों में महिलाओं का प्रवेश आदि लैटिन अमेरिका की नव-उदारवादी अर्थव्यवस्थाओं के पहलू हैं। इनके साथ ही सामाजिक संबंधों और पारम्परिक उत्पादन व्यवस्थाओं के विलय को भी जोड़ना होगा। इसके परिणामस्वरूप, एक विशाल जनसंख्या सामने आती हैं जो राष्ट्रीय और व्यावसायिक सीमाओं के आर-पार आती-जाती रहती हैं। 'ढांचागत हाशियाबंदी' के साथ 'ज़ोर-ज़बरदस्ती की हाशियाबंदी' को भी जोड़ना होगा जो लैटिन अमेरिका में उदारीकरण और भूमंडलीकरण के चलते पनप रही हैं।

दूसरा, भारी संख्या में लोगों को पहले ही सीमा के नीचे किया जा चुका है, जो लोकतांत्रिक प्रक्रिया में किसी भी अर्थपूर्ण भागीदारी के लिए आवश्यक भी है। निस्संदेह, लोकतंत्रीकरण की प्रक्रिया 'कम गहनता वाली नागरिकता' को पैदा कर रही है जिसमें सामाजिक-आर्थिक स्थिति के चलते बातचीत के

मूल्यों, सर्वसम्मति और बहुलता, शासन की संस्थाओं के प्रति सम्मान और कानून के राज को बनाए नहीं रखा जा सकता। लोकतांत्रिक विचारक और नव-उदारवादी यह स्वीकार करते हैं कि लोगों को सामाजिक-आर्थिक संपन्नता के एक निश्चित न्यूनतम स्तर से नीचे नहीं गिरने की छूट होनी चाहिए, जहाँ लोकतांत्रिक प्रक्रिया में उनकी भागीदारी असंभव अथवा निरर्थक हो जाती है। किन्तु बाज़ार-आधारित आर्थिक नीतियाँ क्षेत्र के लगभग 40 प्रतिशत लोगों को जबरन बहुत पीछे छोड़े दे रही है।

चुनावी लोकतंत्र उस तरह की माँगों और दबावों को नहीं बना रहा है जिसकी अपेक्षा एक लोकतांत्रिक राज्यतंत्र में की जाती है। एक के बाद एक आर्थिक विफलता ने, ओ' डोमेल के शब्दों में, 'बंदी की दुविधा' (Prisoner's Dilemma) को पैदा किया है। आर्थिक विफलताओं के प्रत्येक दौर का अर्थ होता है राज्य की क्षमताओं का और अधिक क्षरण और समाज के अन्य वर्गों की कीमत पर संकीर्ण निजी हितों को बढ़ावा।

राज्य की क्षमता और ढांचों में अलगाव होने के चलते उद्यमियों के नए वर्ग का प्रभाव और शक्ति भी उसी अनुपात में बढ़ रही है। यह नया उच्च वर्ग राज्य के नियंत्रण से अधिकाधिक मुक्त (स्वायत्त) है और इसकी सामाजिक प्रतिष्ठा और शक्ति भी घरेलू आर्थिक पुनर्गठन और भूमंडलीय बाज़ार में एकीकरण के बाद बढ़ गई है। निगमगत व्यापार को अब केवल शक्ति की छवि के रूप में नहीं देखा जाता बल्कि आधुनिकता के प्रतीक के रूप में भी देखा जाता है। "वह पुरुष/महिला, बाज़ार, प्रतिस्पर्धा, और अधिकारपूर्ण व्यक्तिवाद ने लैटिन अमेरिकी समाज में अत्यधिक वैधता प्राप्त कर ली है।"

7.6 सारांश

राज्य की भूमिका में कटौती और उसकी जगह आत्म-नियंत्रक बाज़ार को लाना आज की लैटिन अमेरिकी सरकारों के आर्थिक कार्यक्रम का मुख्य लक्ष्य है। इस तरह की स्थिति में, निजी व्यापारिक हितों को उत्पादनशील निवेश करना है, जबकि राज्य को सार्वजनिक सामानों और उन सामाजिक क्षेत्रों की राहत पर ध्यान केन्द्रित करना है जो बाज़ार और राज्य के संबंध में आए बदलाव से सबसे अधिक कुप्रभावित हैं। इस प्रकार, विकास का उभरता नव-उदारवादी नमूना वित्तीय और मौद्रिक अनुशासन, मुक्त व्यापार और खुले बाज़ारों, और आर्थिक क्षेत्र में राज्य की न्यूनतम भूमिका पर आधारित हैं। आर्थिक मामलों में राज्य की सीमित भूमिका का निहितार्थ वह बाज़ार है जो अधिकाधिक अनियंत्रित है जबकि 'मुक्त' बाज़ार राष्ट्रीय आर्थिक नीतियों और क्षेत्रीय आर्थिक एकीकरण को भी निदेशित कर रहा है। इन परिस्थितियों में पात्रों के पास आर्थिक संसाधनों का अभाव रहता है और वे बाज़ार की दया पर निर्भर होते हैं। नव-उदारवाद की इस नई व्यवस्था में राज्य अपनी अवसंरचनात्मक शक्तियों और कार्यों से हाथ धो रहा है। जहाँ राज्य बाज़ार-सुधारों का प्रयास कर रहा है वहीं बाज़ार अपने आपमें सामाजिक आवश्यकताओं के प्रति उदासीन बने हुए हैं। केवल क्षेत्र की विकास दर ही नहीं घटी है बल्कि उदारीकृत निवेश वाले शासन और पूँजी बाज़ार पहले ही काफी बड़ी मात्रा में सट्टा पूँजी को आकर्षित कर रहे हैं, और इसके फलस्वरूप लैटिन अमेरिका की अर्थव्यवस्थाएँ अभूतपूर्व अनिश्चितता की स्थिति में पहुँच गई हैं।

7.7 अभ्यास प्रश्न

1) लैटिन अमेरिका ने 1950-1970 के दशकों में जो आयात स्थानापन्न (विकल्प) औद्योगीकरण (आई एस आई) की नीति अपनाई थी उसके गुण-दोषों का विवेचन कीजिए।

2) नव-उदारवाद से आप क्या समझते हैं? लैटिन अमेरिका में हाल के दशकों में जो नव-उदारवादी आर्थिक नीति अपनाई उसके प्रमुख तत्वों की व्याख्या कीजिए।

3) विकास के मुख्य वाहक के रूप में राज्य के प्रभावक्षेत्र को लैटिन अमेरिका में अत्यधिक सीमित कर दिया गया है। क्या आप इस किन से सहमत हैं?

4) बाज़ार की विस्तृत भूमिका का लैटिन अमेरिकी समाज पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ा है। अपनी पसंद के किसी एक लैटिन अमेरिकी देश के हाल के अनुभव के आधार पर इस कथन की व्याख्या कीजिए।